जीवन विद्या शिविर

दिनांक 01.06.08 से 06.06.08

स्थान – वन विद्यालय अमरकंटक

दिनांक 01.06.08 को सत्र का प्रारंभ प्रातः 11.15 बजे हुआ । सत्र के आरंभ में श्री नंदकुमार जी, सचिव स्कूल शिक्षा, श्री गणेश बागडिया जी, सोम जी, कुमार संभव जी, तथा अभ्यूदय संस्थान के कुछ सदस्य तथा छत्तीसगढ़ से आए हुए विभिन्न प्रतिभागीगण उपस्थित थे । इसी बीच आदरणीय बाबा ए.नागराज जी का आगमन हुआ । अभिवादन शिष्टाचार के बाद बाबा नागराज ने सभा को संबोधित किया । उन्होंने भौतिकवाद, भक्ति विरक्ति विधि सहित फल परिणाम के विषय में समझाते हुए कहा कि समाधान से समृद्धि है तथा समृद्धि, श्रम नियोजन से प्राप्त करना चाहिए जिसके लिए अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान आवश्यक है जिसे पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा में समाविष्ट किया जा सकता है । आपने कहा कि भौतिकवाद एवं भक्ति विरक्ति इन दोनों माडल से जीने के लिए कोई समाधान समृद्धि प्राप्त नहीं हुआ इसलिए ये दोनों माडल ही उचित नहीं है । भौतिकवाद का विकल्प अस्तित्ववाद है इसके अंतर्गत दर्शन, विचार, शास्त्र व संविधान शामिल है, अस्तित्वमूलक मानव इन्हीं पर चिन्तन करता है । इन बातों पर चिंतन करने पर ही मानव अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित कर सकता है । मानव के व्यक्तित्व का निर्धारण आहार, विहार तथा व्यवहार के रूप में होता है जिससे समाधान के लिए प्रेरणा व न्याय अर्थात समाधान प्राप्त होता है तथा तीनों से मानव संस्कृति व सभ्यता स्पष्ट होती है । स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान है । अतः व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलंबन से इसकी पूर्ति होती है ।

इसके पश्चात सचिव महोदय ने जीवन विद्या को पाठ्यक्रम में शामिल करने के संबंध में कहा कि इसे पाठ्यक्रम को छेडे बगैर अलग से विषय के रूप में सहायक वाचन आदि के रूप में पहली से बारहवीं तक के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा । इसे हेतु 4 माह के भीतर योजना पूर्ण कर ली जाएगी । सभी प्रतिभागियों की सहमति इस पर बनी । इसके पश्चात परिचय का सत्र चला जिसमें प्रतिभागियों से पूर्व शिविर के बारे में अनुभव तथा इसे पाठ्यक्रम में किस प्रकार लागू किया जा सकता है इस पर चर्चा हुई । इसके पश्चात सोम जी द्वारा संबोधित किया गया तथा प्रतिभागियों से प्राप्त समस्याओं का निराकरण किया गया । उन्होंने कहा कि स्वयं में, एक व्यक्ति के रूप में, एक पिता के रूप में इसे जांचने की कोशिश की है । जो चीज मेरे लिए, मेरे परिवार के लिए, मेरे बच्चों के लिए उपयोगी नहीं है वह शिक्षा के लिए उपयोगी नहीं है । पाठ्यक्रम के संबंध में तीन माडल निकलकर आ रही है । 1. स्थापित ढांचे में परिवर्तन किया जाये । 2. अनावश्यक ढांचे में छेड छाड न किया जाए और कक्षा 1 से 12

तक एक अलग से सहायक वाचन आदि के रूप में क्रमवार रखें । 3. आवश्यकता अनुसार प्रचलित पाठ्यक्रम में संशोधन किया जाए ।

उत्सवपूर्वक जीने का स्वरूप कैसा होगा ? मानवीय शिक्षा, मानवीय संविधान एवं मानवीय व्यवस्था के अनुरूप हो । वर्तमान ढांचे को छेडे बिना इस पूरी बात को किस प्रकार व्यवस्थित करें कि बच्चे के अंदर स्वयं की समझ, विश्वास एवं समाधन आए । इसके बारे में विचार करें । इसके बाद चार अवस्थाओं 1. पदार्थ अवस्था 2. प्राण अवस्था 3. जीव अवस्थ तथा 4. ज्ञान अवस्था अर्थात मानव के बारे में चर्चा की गई । जीव अवस्था में जीवन शरीर को चलाने को प्रमाणित करता है। मानव में जीवन स्वयं के होने को प्रमाणित करता है । शिविर की रूप रेखा की चर्चा करते हुए कहा कि कक्षा 1 से 12 तक क्रमशः क्या दिया जाए ? पुस्तक का स्वरूप कैसा होगा ? टीचर गाईड कैसा होगा ? आदि विषय पर चर्चा होगी ।

इसके बाद श्री गणेश जी ने आगे के सत्र का संचालन किया । आपने कहा कि शिक्षा संस्कार की आवश्यकता क्यों ? मानव में आचरण निश्चित नहीं है । अतः निश्चित आचरण को सीख सके, पहचान सके, जी सके इसलिए शिक्षा संस्कार की आवश्यता है । जैसा शिक्षा संस्कार देते हैं वैसा ही उनका आचरण होता है । यही समझ भी है, समाधान भी है । मानव शिक्षा संस्कार अनुषंगी है अर्थात शिक्षा संस्कार के द्वारा आचरण निश्चित होता है । बाकी अवस्थाओं में पदार्थ अवस्था में परिणाम अनुषंगी, अर्थात बनावट के आधार पर आचरण निश्चित होता है । प्राण अवस्था में बीजानुषंगी अर्थात बीज के अनुसार आचरण होता है । तथा जीव अवस्था में वंशानुषंगी होता है अर्थात वंश के अनुसार आचरण निश्तिच होता है । गाय के वंश के अनुसार गाय का आचरण निश्तिच होता है । ज्ञान अवस्था में शिक्षा संस्कार अनुषंगी होता है । यदि बच्चे के संघर्ष की शिक्षा देते हैं तो वह झगडा ही करेगा । वह संबंध पूर्वक जी नहीं सकेगा । इसलिए जब हम शिक्षा दें तो पूरी ईमानदारी से पढाएं । अभिभावक, शिक्षक एवं समाज तीनों से बच्चा प्रभावित होता है । इसलिए इनको जिम्मेदार होना चाहिए । इसके लिए शिक्षक को सबसे ज्यादा जिम्मेदार होना आवश्यक है क्योंकि बच्चा पूरी आस्था एवं विश्वास के साथ शिक्षक का सम्मान करता है एवं फालो करता है । इसके बाद पालक की जिम्मेदारी होती है । आज समाज ने यह मान लिया है कि शिक्षा संस्कार का काम शिक्षक का ही है ।

शिक्षा संस्कार के लिए जिम्मेदार कौन है ? इसके लिए तीन लोग जिम्मेदार है –

1. अभिभावक
2. शिक्षक
3. समाज

इसके लिए तीन प्रकार की योजना है –

1. लोक शिक्षा योजना
2. शिक्षा संस्कार योजना

3. परिवार मूलक स्वराज्य योजना

स्वराज्य का मतलब है सार्वभौम व्यवस्था, सहअस्तित्व । हर व्यक्ति समाधानित है तथा दूसरों के साथ समाधानमूलक नहीं है । इसमें हर व्यक्ति जिम्मेदार है । यदि मानव क्या है ? यह स्पष्ट नहीं है तो मानवीय शिक्षा स्पष्ट नहीं होगा । अगर यह स्पष्ट नहीं है तो मानवीय शिक्षा स्पष्ट नहीं होता । मानवीय शिक्षा संस्कार में विद्यार्थी मानवीय आचरण से जी पाता है ।

मानवीय शिक्षा संस्कार का उद्देश्य क्या है ? मानवीय शिक्षा संस्कार का उद्देश्य चेतना विकास है । अर्थात जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमण को सुनिश्चित करना । मानव की तीन आवश्यकताएं है 1. सुविधा । सुविधा पशु के लिए आवश्यक है एवं संपूर्ण है । मानव के लिए यह आवश्यक है लेकिन संपूर्ण नहीं है । 2. संबंध । मानव का मानव के साथ संबंध । 3. समझ । स्वयं में समझ । संबंध कैसा है ? निर्वाह कैसे होगा ? यह समझ में नहीं आता है इसका कारण समझ है । समझ स्वयं में होगी इसलिए आदमी की समझ, संबंध एवं सुविधा तीनों की आवश्यकता है । केवल सुविधा के लिए जीने वाला जीव चेतना में होता है । सुविधा, संबंध एवं समझ के लिए जीने वाला मानव चेतना है । समझ के आधार पर संबंध में, स्वयं में सुखी होता है तथा दूसरों के सुखी होने में सहायक होता है । अर्थात उभय सुख । सुविधा की आवश्यकता है । कितनी सुविधा की आवश्यकता है इसे पहचानना एवं आवश्यकता से अधिक उत्पादन आर्वतनशील विधि से अर्थात उभय समृद्धि । प्रकृति की सुरक्षा आर्वतनशील उत्पादन से निरंतरता आती है । यदि उपभोग इसकी गति से अधिक गति से करते हैं तो इसका अभाव हो जाताा है । यदि हम अवर्तनशीलता के चक्र को तोडते हैं तो हम समस्याग्रस्त हो जाते हैं । मानव की समृद्धि सुनिश्चित करना तथा प्रकृति की सुरक्षा सुनिश्चित करना है । बच्चों को 10 साल की आयु तक समझ एवं संबंध की पहचान के बारे में जानकारी दी जा सकती है । इसके लिए शरीर मजबूत है या नहीं इसकी आवश्यकता नहीं है । 15 साल की उम्र तक परिवार एवं संबंध के बारे में जानकारी एवं छोटी छोटी उत्पादन गतिविधियों के बारे में भी जानकारी प्रदान की जा सकती है ।

दूसरे दिन के सत्र का आरंभ श्री गणेश जी ने बच्चों की जिज्ञासा से संबंधित समझ से किया । आपने कहा कि हर आदमी के बच्चे जिज्ञासु होते है। प्रश्न पूछते ही हैं । शिक्षा संस्कार योजना के बिना आचरण में परिवर्तन संभव नहीं है । बच्चे चाहे अमीर के हों, गरीब के हों, गांव के हों, शहर के हों बच्चा कोई भी हो प्रश्न पूछता ही है । शिक्षा के आधार पर, समझ के आधार पर, सुविधा की आवश्यकता को पहचान कर आचरण निश्चित निश्चित होना चाहिए । प्रथम दिवस की चर्चा की पुनरावृत्ति करते हुए समझाए कि वर्तमान में शिक्षा सुविधा के लिए दी जा रही है जबकि शिक्षा की शुरूआत समझ से होनी है । पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था तथा जीव अवस्था का आचारण निश्चित है किन्तु ज्ञान अवस्था में निरंतर सुख से समाधानपूर्वक जीना चाहता है परंतु शिक्षा संस्कार के अभाव में ऐसा नहीं हो रहा है ।

आवश्यकता की पहचान एवं सदुपयोग की जरूरत है । व्यक्ति में समाधान एवं परिवार में समृद्धि के लिए संबंधों का होना आवश्यक है । शासन अपने आप में अव्यवस्था है क्योंकि यह संबधों पर नहीं चलता दबाव पर चलता है । सुविधा मानव के लिए आवश्यक है लेकिन संपूर्ण नहीं है । आपने आप से यह प्रश्न पूछते रहना चाहिए कि मेरे परिवार में सुख सुविधा नहीं होने के कारण दुख है या संबंध के न होने के कारण दुख है । हमारी पहली प्रायरटी समझ होनी चाहिए । सभी प्रकार के संबंध तथा तीसरी प्रायरटी सुविधा के लिए होनी चाहिए । शिक्षा संस्कार का कार्य बहुत महत्वपूर्ण है । हमारे संबंधों में विश्वास नहीं है क्योंकि संवाद की कमी है । कमनीकेशन के लिए ट्रांसमिशन एवं कमनीकेशन दोनों की जरूरत है । हम ट्रांसमिशन को ही महत्वपूर्ण मानते हैं । मानव समाधान एवं समृद्धि पूर्वक निरंतर सुखपूर्वक जीना चाहता है । समाधान से सुखी होता है । समाधान पर चलते हैं तो पता चलता है यह ज्ञान से प्राप्त होता है । समझदार, शिक्षित मानव आवश्यकता से अधिक आवर्तनशील विधि से उत्पादन करेगा जिससे स्वयं का पोषण करेगा साथ ही दूसरों की समृद्धि में सहायक होगा । आवर्तनशील तीन तरह का होता है 1. लेन लेन 2. लेन देन 3. देन देन । हमें दूसरे की आवश्यकता है । संबंध के निर्वाह का अभाव है तो लेन देन नहीं हो पाता । समृद्धि को समझ के साथ जोडते हैं । व्यक्ति में समाधान, परिवार में समाधान एवं समृद्धि। संबंधों की शुरूआत परिवार से होता है फिर विश्व परिवार के बारे में सोचते हैं ।

समझ के बारे में चर्चा करते हैं तो समझ तीन प्रकार से पूरी होती है –

1. स्वयं को समझना
2. प्रकृति को समझना/अस्तित्व को समझना
3. सबंघों का समझना – 1. मानव के साथ –व्यवहार –न्याय । तथा 2. शेष प्रकृति के साथ कार्य – नियम ।

सबसे पहले स्वयं को समझना महत्वपूर्ण है । स्वयं को समझना सबसे पहला काम है । अतः शिक्षा में कक्षा 1 से 12 तक स्वयं को समझने के लिए किन किन चीजों पर ध्यान देना होगा ? क्योंकि जीने वाला, सोचने वाला, सुख दुख भोगने वाला मैं ही हूँ इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है । यदि स्वयं को समझते हैं तो अगली सीढ़ी है प्रकृति को समझना, ईकाई को समझना, अस्तित्व को समझना जरूरी है । इसलिए पाठ्यक्रम में आवश्कयता है प्रकृति को समझना । इन दोनों को समझने के बाद हमें आवश्यकता पड़ती है संबंध की । जब हम संबंध को समझने जाते है तो दो चीजें दिखती है – 1. मानव के साथ संबंध तथा 2. शेष प्रकृति के साथ संबंध । जब हमारी समझ मानव के साथ होता है तो वह व्यवहार के रूप में होता है । इससे न्याय प्रमाणित होता है । दूसरा शेष प्रकृति को समझते हैं तो इसका फल कार्य रूप में प्राप्त होता है । इससे नियम प्रमाणित होता है । उपरोक्त चारों में से किसी एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता । अभी हम इनमें से किसी एक काम को भी नहीं कर पा रहे हैं । भौतिक

वस्तु के सदुपयोग से संबधं के पालन के बारे में जिम्मेदारी आता है या नहीं ? 12 साल शिक्षा के बाद बच्चों में जिम्मेदारी बढ़ती है या कम होती है ? इसके बारे में सोचकर हम इनका आंकलन कर सकते हैं । यदि शिक्षक समझदार नहीं है और पाठ्यक्रम है भी तो भी उस चीज को बच्चों तक नहीं पहुंचाया जा सकता । इसी प्रकार यदि शिक्षक समझदार है लेकिन पाठ्यक्रम नहीं है तो भी प्रचलित पाठ्यपुस्तक में समावेश करते हुए उसे बच्चों तक पहुंचा सकता है ।

1. स्वयं को समझना – मानव मैं एवं शरीर के सहअस्तित्व में है । यदि आप अपनी आवश्यकता को ध्यान देते हैं तो दो चीजें निकलकर आती है–1. सम्मान जैसी आवश्यकता की 2. भाजन जैसी आवश्यकता । यदि हम इन दोनों का अलग अलग देखें तो समाने आता है–

	सम्मान जैसी चीजों की आवश्यकता	भोजन जैसी चीजों की आवश्यकता
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव)	सीमित मात्रा में
रूप में	सुख	सुविधा
पूर्ति में	सही समझ से, भाव से	भौतिक वस्तुओं से
क्रिया	आशा, विचार, इच्छा	खाना, चलना
आवश्यकता	निरंतर	सामयिक
	जानना, मानना	पहचानना
	पहचानना, निर्वहन करना	निर्वहन करना
	चैतन्य ईकाई	जड ईकाई

अभी हमारी मान्यता है कि मानव केवल शरीर है । उपरोक्त स्थिति को देखने से पता चलता है कि मानव केवल शरीर नहीं है । दूसरे कालम की चीजों की आवश्यकता शरीर की होती है जबकि पहले प्रकार की आवश्यकता शरीर की नहीं होती । यह किसी और की आवश्यकता होती है जिसे मैं या जीवन कहते हैं । अभी आदमी दो प्रकार के हैं 1. साधन विहिन, दुखी दरिद्र 2. साधन संपन्न, दुखी दरिद्र । आप होना क्या चाहते हैं ? साधन संपन्न सुखी समृद्ध । अभी केवल एक से दो को प्राप्त करने का प्रयास है । सार्थकता क्या है ? सार्थकता का मतलब है भागीदारी । यदि मैं जीने जाता हूँ तो व्यवस्था में, जीने में कितनी सार्थकता है । यदि हमारी समझ विकसित होती है तो उपलब्ध सुविधा की उपयोगिता या आवश्यकता सुनिश्चित होता है । मैं का पहचाना एवं निर्वाह करना मानने के आधार पर है । यदि यह बात स्पष्ट नहीं होता या बदल जाता है तो पहचानना व निर्वाह करना बदल जाता है । शरीर में केवल पहचानना एवं निर्वहन करना होता है । यदि हम केवल पहचानने एवं निर्वहन करने में रहते हैं तो हम समस्या में ही रहते हैं । यदि मानना जानने के आधार पर होता है तो पहचानना एवं निर्वहन करना ठीक या सही होता है । हम समाधान में होते हैं इसी

का नाम ज्ञानावस्था है । शिक्षा एवं संस्कार ही दो मानव के लिए महत्वपूर्ण काम है । अभी मान्यताएं दो प्रकार की है । एक मान्यता वो है जिसे सभी लोग स्वीकार करते हैं जिसका एलान किया जाता है । यह केवल मानने के आधार पर होता है । लेकिन दूसरी मान्यता इससे खतरनाक होती है क्योंकि व्यक्ति को लगता है कि यह मान्यता नहीं है जबकि वास्तव में वह किसी मानयता ही होती है । उसे मान्यता स्वीकार नहीं होता । जब व्यक्ति जानने के आधार पर मानता है, पहचानता है और निर्वाह करता है तो इस प्रकार की ईकाई को चैतन्य ईकाई कहते हैं । जबकि केवल मानना के आधार पर मान्यता के कारण पहचानना एवं निर्वाह करना होता है वह जड़ ईकाई कहलाता है । इस प्रकार दो ईकाई जड ईकाई एवं चैतन्य ईकाई दो वास्तविकता है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं, इसलिए सुखपूर्वक जीने के लिए इन दोनों ईकाईयों को समझना जरूरी है । क्योंकि समस्या का समाधान होने पर ही सुख मिलता है । शरीर जड ईकाई है तथा मैं चैतन्य ईकाई है । शरीर और मैं के बीच सूचनाओं का आदान प्रदान होता है । मैं द्वारा प्रदान की गई सूचना के आधार पर शरीर कार्य करता है जो कि भौतिक रसायनिक होता है । यदि प्राप्त होने वाली सूचना अपेक्षा के अनुरूप होता है तो अच्छा लगता है, सुख मिलता है लेकिन यदि प्राप्त सूचना अपेक्षा के अनुसार नहीं होता तो अच्छा नहीं लगता, सुख नहीं मिलता । सूचना शरीर से मैं तक या मैं से शरीर तक जाता है इसमें किसी भौतिक रसासयनिक चीजों का आदान प्रदान नहीं होता । संवेदनाओं के माध्यम से ही आदान प्रदान होता है । संवेदनाओं से आने वाली सूचना सामयिक होता है । निरंतर सुख की सप्लाई नहीं होती । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि इंद्रियों के बाह्य वस्तु के संपर्क में होने वाली संवेदना के अस्वादन से मिलने वाली सुख की निरंतरता नहीं होती है ।

बाह्य वस्तु —संपर्क→ शरीर इंद्रिय —संवेदना→ —अस्वादन→ मैं (सुख)

चैतन्य क्रिया की पूर्ति चैतन्य क्रिया से ही प्राप्त होती है । सही समझना, सही सोचना मैं द्वारा ही होता है । शरीर मैं के लिए एक साधन है । सही समझ है, सही भाव है तो इसमें सुख की प्रवृत्ति हो सकती है ।

मैं (जीवन) की क्रिया निम्न प्रकार की है –

	शक्ति	**गति क्रिया**	**स्थिति क्रिया**	**बल**
1.				
2.				
3.	इच्छा	चित्रण	चिंतन	
4.	विचार	विश्लेषण	तुलन	
5.	आशा	चयन	आस्वादन	

आशा, विचार, इच्छा जब मान्यताओं या संवेदनाओं के द्वारा होता है तो उसमें परतंत्रता होती है । परंतु ये कल्पनाशीलता यदि सही समझ के द्वारा होती है तो निरंतर सुख मिलता है । आशा, विचार, इच्छा के लेबल से आने वाली क्रिया की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है तो इसका परिणाम मिल जाने पर ही इसका पता चलता है, अन्यथा इसका पता नहीं चलता । इसलिए आवश्यक है कि आशा, विचार, इच्छा के लेबल पर इस बात को पकड लें । जो हो रहा है उसके प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है । यदि हमारा आशा, विचार तथा इच्छा किन्ही मान्यता के आधार पर हो रहा है तो सही भी हो सकता है और गलत भी हो सकता है । यदि आशा, विचार एवं इच्छा सही समझ के आधार पर होगा तो इसका परिणाम सुख का होगा । अभी हम मानकर चलते हैं कि दृष्टा में दृष्टि दर्शन की क्षमता नहीं होती । दृष्टा का मतलब है जो अंदर देख पाता है । दृष्टा में दर्शन की क्षमता नहीं होती । तीन चीजें है दृष्टा, दर्शन एवं दृष्टि । आशा, विचार, इच्छा मान्यता से, संवेदना से या समझ से आ रही है इसको देखना होगा । यदि मान्यता से आ रहा है तो यह परतंत्रता है । यदि संवेदना के आधार पर आ रहा है तो भी यह परतंत्रता है। यदि हमारा आशा, विचार तथा इच्छा समझ के आधार पर हो रहा है तो यह स्वतंत्रता है ।

तृतीय दिवस की शुरूआत जीवन की क्रियाओं को समझने से ही हुआ । जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमित होने के लिए मैं की सजगता आवश्यक है । मुझमें इच्छा, विचार तथा आशा की क्रियाएं होती है जिसके आधार पर चित्रण, विश्लेषण, चयन तथा आस्वादन की क्रियाएं मैं में होती है । सही इच्छा से मैं सुखी होता हूॅं । मान्यताओं या संवेदनाओं पर आधारित इच्छा से मैं दुखी होता हूॅं । मानव मैं और शरीर के सहअस्तित्व में है । मूल चीज मैं है, शरीर एक साधन के रूप में है । आशा, विचार, इच्छा के प्रति सजग होना आवश्यक है । हमारी कल्पना का स्रोत कहां है ? इसको जीवन की क्रियाओं के रूप में देखें ।

	शक्ति	गति क्रिया	स्थिति क्रिया	बल
1.			अनुभव	
2.			बोध	
3.	इच्छा	चित्रण	चिंतन	
4.	विचार	विश्लेषण	तुलन	
5.	आशा	चयन	आस्वादन	

ekU;rk ijra=rk

laosnuk ijra=rk

le> Lora=rk

कार्य ——— व्यवहार

आशा, विचार, इच्छा को ही कल्पनाशीलता कहते हैं । यदि हमारी कल्पनाएं मान्यता वश या संवेदनावश हो रही है तो यह परतंत्रता है । यदि हमारी कल्पनाएं समझ के साथ हो

रही है तो यह स्वतंत्रता है । कल्पना के प्रति सजग होना है । इसका स्रोत कहां है इसका आंकलन आवश्यक है । समझ के आधार पर कल्पना का तय होने से निरंतर सुख की प्राप्ति होती है । विज्ञान केवल संवेदनाओं को अनुकूल बनाने का प्रयास करती है । आस्वादन की प्रत्याशा में किया जाने वाला क्रिया चयन है, इसका नाम दिया है आशा । जैसे एक बंगला बने न्यारा की इच्छा । सबसे पहले यह देखना होगा कि यह कल्पना कहां से आ रही है । जैसे ही हमारी इच्छा होती है तो उस पर विचार करते हैं । फिर विश्लेषण तथा चयन होता है ।

व्यक्ति की सबसे पहली आवश्यकता है कि यह जान पाना कि मैं केवल शरीर नहीं हूँ । मैं और शरीर की परस्परता में जीना होता है । यदि यह समझ में आता है कि मैं केवल शरीर नहीं हूँ तो फिर मैं एवं शरीर के बारे में धारणा स्पष्ट होती है । जब यह स्पष्ट हो जाता है तब मैं में होने वाली क्रियाओं को समझना होता है । इसके अंतर्गत आशा, विचार, इच्छा आदि आता है । इन क्रियाओं में यह देखना कि हमारी आशा, विचार तथा इच्छा कहां से आ रही है ? इसका स्रोत कहां है ? किसी मान्यता से या किसी संवेदना से या समझ से आ रही है । इंद्रियों का बाह्य वस्तु के संपर्क से होने वाली संवेदना के आस्वादन से मिलने वाली सुख की निरंतरता नहीं होती । हर क्षण व्यक्ति ध्यान देता ही है । प्रश्न केवल इतना है कि किसे महत्वपूर्ण मानता है । हम जिसको महत्वपूर्ण मानते हैं उनकी ओर ध्यान देते हैं । लेकिन हम जिन चीजों पर ध्यान देते हैं वह सुविधा होता है और यह पर्याप्त नहीं होता । यदि हम मैं पर ध्यान देते हैं तो वह समझ के साथ होता है । स्वतंत्रता पूर्वक, सुखपूर्वक जीने के लिए समझ महत्वपूर्ण चीज है ।

तुलन हम शरीर के आधार पर करते हैं । तुलन छः प्रकार का होता है । तुलन को दृष्टि भी कहते हैं । प्रिय, हित, लाभ, न्याय, धर्म एवं सत्य । प्रिय दृष्टि इंद्रिय सापेक्ष होता है । हित दृष्टि शरीर सापेक्ष होता है । लाभ वस्तु सापेक्ष होता है । इस आधार पर तुलन होता है । चित्रण मान्यता या संवेदनावश होता है ।

अस्तित्व ही सहअस्तित्व है । शून्य में संपृक्त ईकाईयों का होना । जो कुछ भी है वह व्यवस्थापूर्वक है । व्यवस्था है ही केवल उसे पहचानना है । व्यवस्था बनाना नहीं है । अस्तित्व में केवल दो ही चीज है 1. ईकाई और 2. शून्य । अब हम इन दोनों के गुण धर्म के बारे में देखते हैं ।

ईकाई	शून्य
सीमित आकार	असीमित आकार (व्यापक)
क्रियाशील (कर्ता नहीं)	क्रियाशून्य (शून्य)
उर्जा संपन्न	साम्य उर्जा (सर्वशक्तिमान नहीं)
नियंत्रित है (स्वंय में व्यवस्था)	नियंत्रण उपलब्ध है (नियता नहीं)
परस्परता को पहचानना	पारदर्शी (सर्वज्ञ नही)

lai'Dr

परस्परता में निर्वाह करना

अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदार

एश्वर्य **ईश्वर**

चूंकि सारा एश्वर्य ईकाई में ही है इसलिए ईकाई का एश्वर्य कहा तथा ये सारा एश्वर्य शून्य में संपृक्त है इसलिए शून्य को ईश्वर कहा । हर ईकाई शून्य के सहअस्तित्व में स्वयं स्फूर्त है । ईश्वर है लेकिन सर्वशक्तिमान नहीं है, नियता नहीं है, सर्वज्ञ नहीं है । अभी तक हमारी धारण ईश्वर के बारे में अलग ही था । हमारी मान्यता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, सबका नियंता वहीं है आदि । इसलिए शून्य ही ईश्वर है । क्यों का उत्तर मिलता है अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी । कैसे का उत्तर मिलता है अपने से छोटी व्यवस्था में भागीदारी अर्थात छोटी ईकाई का व्यवस्था में भागीदारी । क्या का उत्तर मिलता है पूरा अस्तित्व एवं सहअस्तित्व । इसी प्रकार भगवान के बारे में अभी हमारी मान्यता दो प्रकार से है । पहला हम भगवान को व्यापक मानते हैं जिससे सभी जीव जगत की उत्पत्ति हुई है । सबका नियंता वहीं है । इस अर्थ में यह शून्य ही है । शून्य ही ब्रम्ह है । दूसरा हम ईकाई के रूप में देवी देवता को मानते हैं । यदि हम ईकाई के रूप में भगवान को मानते हैं तो वह मैं ही है जीवन ही है । कुछ मैं ऐसे थे जो शरीर धारण किए थे तो हमारा शुभ किए शुभ चाहते थे और शरीर नहीं है फिर भी हमारी सहायता करते हैं हमारा शुभ चाहते हैं इस कामना के साथ । श्रेष्ठता को पाने के लिए प्रयास करना, उसके जैसे होने के प्रयास का क्रम पूजा है । श्रेष्ठता को स्वीकारना ही पूजा है भगवान है । बाहर से प्राप्त होने वाला प्रभाव ही प्रतिबिबन है । किसी एक वस्तु का दूसरे वस्तु पर पडने वाला प्रभाव प्रतिबिंबन है ।

अब हम प्रकृति को समझते है। प्रकृति को समझने जाते हैं तो दो चीज है– 1. जड ईकाई तथा 2. चैतन्य ईकाई । जड ईकाई सामयिक होता है इसमें पहचानने एवं निर्वाह करने की क्षमता होती है। चैतन्य ईकाई निरंतर होता हे इसमें जानने, मानने के आधार पर पहचाने एवं निर्वहन करने की क्षमता होती है । शरीर जड ईकाई है । मैं या जीवन चैतन्य ईकाई है । जड ईकाई में दो चीज आता है 1. पदार्थ अवस्था तथा प्राण अवस्था । प्राण अवस्था का निर्माण भी पदार्थ से ही हुआ है । पदार्थ से परमाणु बना जिसे गठनशील परमाणु कहते हैं । परमाणु से अणु बना । अणु से अणु रचना बना । अणुरचना से दो चीजें बनी–अणु रचित पिंड तथा रस । अणु रचित पिंड से ग्रह एवं गोल बने । तथा रस से प्राणकोशिका बनी । प्राण कोशिका से पेड पौधे, पशु शरीर तथा मानव शरीर बना । जब कोई मैं (जीवन) पशु पक्षी के शरीर को चलाता है तो उसे जीव अवस्था कहते हैं । क्योंकि इसमें केवल जीने की आशा होती है, केवल शरीर को प्रमाणित करने के लिए । जब जीवन किसी मानव शरीर को चलाता है तो उसे ज्ञान अवस्था कहते हैं । इस प्रकार चार अवस्था पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था तथा ज्ञान अवस्था अर्थात मानव की उत्पत्ति हुई है ।

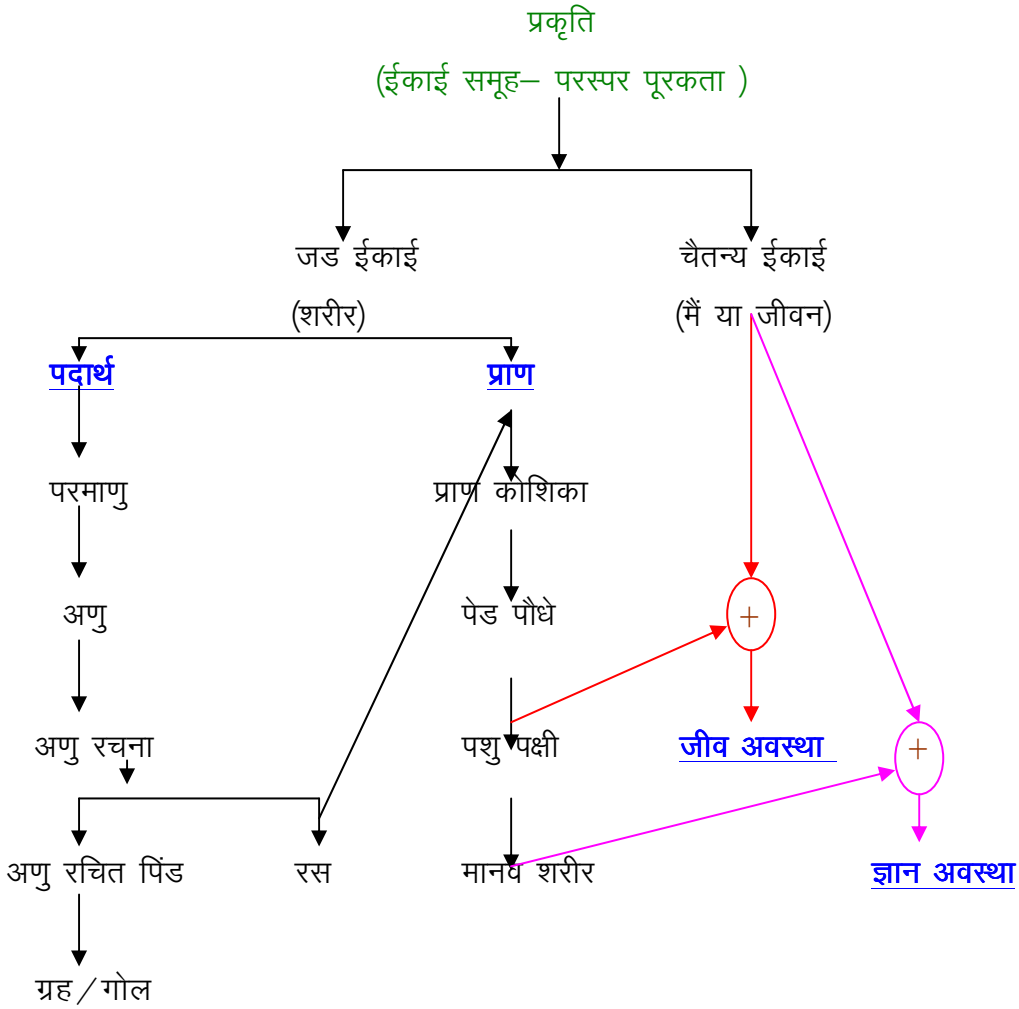

पदार्थ अवस्था	प्राण अवस्था	जीव अवस्था	ज्ञान अवस्था
क्रिया– रचना / विरचना	+श्वसन,प्रश्वसन	+चयन, आस्वादन	+चित्रण, विश्लेषण
धर्म– अस्तित्व	पुष्टि	जीने की आशा	निरंतर सुख से जीना

समझ की चार स्थितियां होती है – 1. सहमति 2. स्वीकृति 3. निष्ठा 4. समझ

जीव अवस्था	ज्ञान अवस्था (मानव)
घटना के साथ जीना	घटना के नियम समझने का प्रयास
सामयिक	नित्य वर्तमान
प्रतिक्रिया	जिम्मेदारी
रियेक्शन	रिस्पॉण्ड

संक्रमित होकर वापस न लौटना, यही विकास है । संक्रमित होकर फिर उसी स्थिति में आना आर्वतनशीलता है । यदि मैं किसी शरीर को चलाता है तो वह अपने निरंतर सुखपूर्वक जीने को प्रमाणित करता है जो समाधान होता है और समाधान केवल ज्ञान के द्वारा ही होता है, इसलिए इसे ज्ञान अवस्था कहा गया है । यही मानवीय धर्म है । पदार्थ अवस्था का धर्म अस्तित्व या होना है जबकि इसमें क्रिया रचना एवं विरचना की होती है । प्राणावस्था का धर्म होना एवं पुष्टि है । इसमें रचना विरचना के साथ साथ श्वसन/प्रश्वसन की क्रिया होती है । जीवावस्था का धर्म जीने की आशा है जबकि इसमें रचना विरचना, श्वसन, प्रश्वसन, जीने की आशा के साथ साथ चयन एवं आस्वादन की क्रिया होती है । ज्ञानावस्था का धर्म मानवीय आचरण है । ज्ञानावस्था में चयन, अस्वादन, तुलन, विश्लेषण, चित्रण आदि क्रियाएं होती है । इसलिए ज्ञानावस्था सबसे महत्वपूर्ण है और यह कार्य शिक्षा के माध्यम से हो सकता है क्योंकि मानव शिक्षा संस्कार अनुषंगी है ।

अस्तित्व बराबर सहअस्तित्व । अर्थात अस्तित्व में ईकाई एवं शून्य है । ईकाई एवं शून्य के बीच के संबधं को सत्य कहा । प्रकृति में ईकाई का ईकाई के साथ संबंध परस्पर पूरकता को धर्म कहा । जड का जड से परस्परता में संबंध को नियम कहा । तथा चैतन्य ईकाई का चैतन्य ईकाई के संबंध को पहचानना, जानना ही न्याय है ।

किसी चीज को जांचना का आधार क्या होगा ? स्वयं के अधिकार पर जांचना । यह कैसे होगा ?

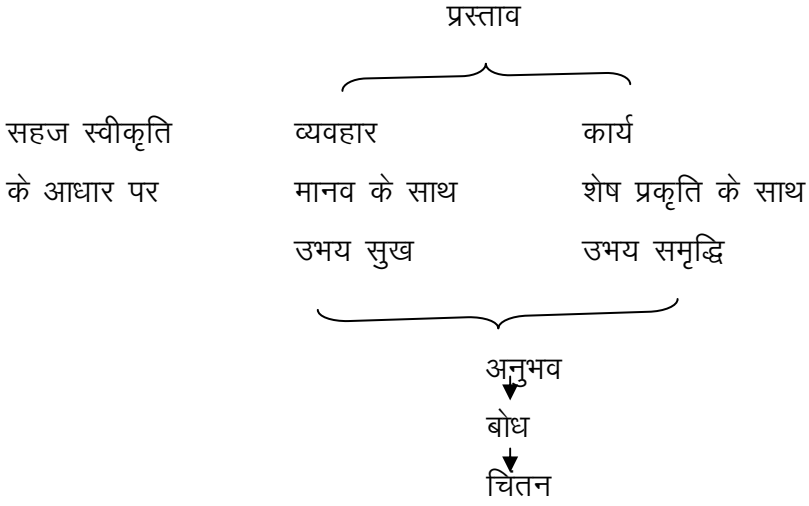

किसी ईकाई के रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म को ही परमधर्म कहते है । स्वभाव का मतलब है भागीदारी । भागीदारी का मतलब है अर्थ व्यवस्था के रूप में अर्थ । अर्थ का मतलब है चिंतन । चिंतन का मतलब है बोध । धर्म का मतलब है धारणा । धारणा व्यवस्था के प्रति । परमधर्म ही सहअस्तित्व है । किसी ईकाई का रूप और गुण परस्परता में परिवर्तनशील होता है । जबकि किसी ईकाई का स्वभाव व धर्म निरंतर बना रहता है । यही अनुभव है । सहअस्तित्व का अर्थात

सत्य का, वास्तविकता का अर्थात धर्म का, यर्थाथता का मतलब अर्थ का तथा भागीदारी का अर्थात मूल्य की समझ ही स्वत्व है । अनुभव, बोध एवं चिंतन को एक साथ ज्ञान कहा । यदि यह तीनों चीजें प्राप्त हो जाती है तो ज्ञान हो जाता है ।

स्वभाव का दिखना, व्यवस्था के अर्थ में भागीदारी को देखना ही चिंतन है । किसी ईकाई का धर्म या धारणा को समझना और व्यवस्था में भागीदारी को समझना ही बोध है । किसी ईकाई के परमधर्म, चिंतन एवं बोध का एक साथ देखना ही अनुभव है । किसी भी ईकाइ का चिंतन, बोध एवं अनुभव निरंतर होता है । दृष्टा यदि स्वयं को ठीक ठीक देख पाता है तो वह दृश्य को भी ठीक ठीक देख सकता है । स्वत्व को जानकर स्वतंत्रतापूर्वक रहना ही स्वराज्य है । सूचना बाहर से मिलती है जबकि ज्ञान स्वयं के अंदर से मिलता है।

ज्ञान से कल्पना, कल्पना से कार्य/व्यवहार । स्वत्व से स्वतंत्रता, स्वतंत्रता से स्वराज्य । समझ से जीना, जीने का स्रोत बनना । समझ से मानवीय आचरण, मानवीय आचरण से सार्थक व्यवस्था । पहले परिवार में फिर विश्व परिवार में । समझ ही शिक्षा है । जीना ही संस्कार है। स्वराज्य ही दूसरों के साथ जीना है ।

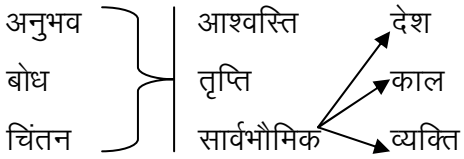

कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दू स्वराज्य है । अस्तित्व ही सहअस्तित्व है । विकास क्रम ही विकास है। जागृति क्रम ही जागृति है। निरंतरता या वास्तविकता के बारे में समझना होता है। शेष चीजों के बारे में सीखना होता है । मानव लक्ष्य चार प्रकार का है । 1. समाधान 2. समृद्धि 3. अभय 4. सहअस्तित्व । इसे ही मानव की सामान्य आकांक्षा भी कहा जाता है । समाधान हर व्यक्ति के लिए । समाधान एवं समृद्धि हर परिवार के लिए । समाधान, समृद्धि एवं अभय हर समाज के लिए तथा समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व प्रकृति के लिए । व्यक्ति में समाधान समझ या ज्ञान से आता है । परिवार में समाधान एवं समृद्धि समझ एवं श्रमपूर्वक आवर्तनशील उत्पादन से आता है । समाज में समाधान, समृद्धि एवं अभय मानव के साथ मानव का संबंध, संबंध की पहचान एवं निर्वाह से आता है । प्रकृति में सहअस्तित्व मानव व प्रकृति के साथ व्यवस्था को पहचानने, निर्वाह करने से होता हैं । इससे परिवार व्यवस्था बनता है और विश्व परिवार की ओर जाते हैं । इससे सार्वभौम व्यवस्था बनती है तथा यही स्वराज्य है । समाज में अभय से न्याय प्रमाणित होता है तथा परिवार से विश्व परिवार तथा अखंड समाज बनता है ।

सार्वभौम व्यवस्था के पांच आयाम है । 1. शिक्षा संस्कार 2. स्वास्थ्य संयम 3. उत्पादन कार्य 4. विनिमय कोष 5. न्याय सुरक्षा ।

समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व को सामान्य आकांक्षा या मानव आकांक्षा कहा जाता है । सुख, शांति, संतोष एवं आनंद को जीवन आकांक्षा कहते हैं । समाधान से सुख, समृद्धि से शांति, अभय से संतोष एवं सहअस्तित्व से आनंद की प्राप्ति होती है ।

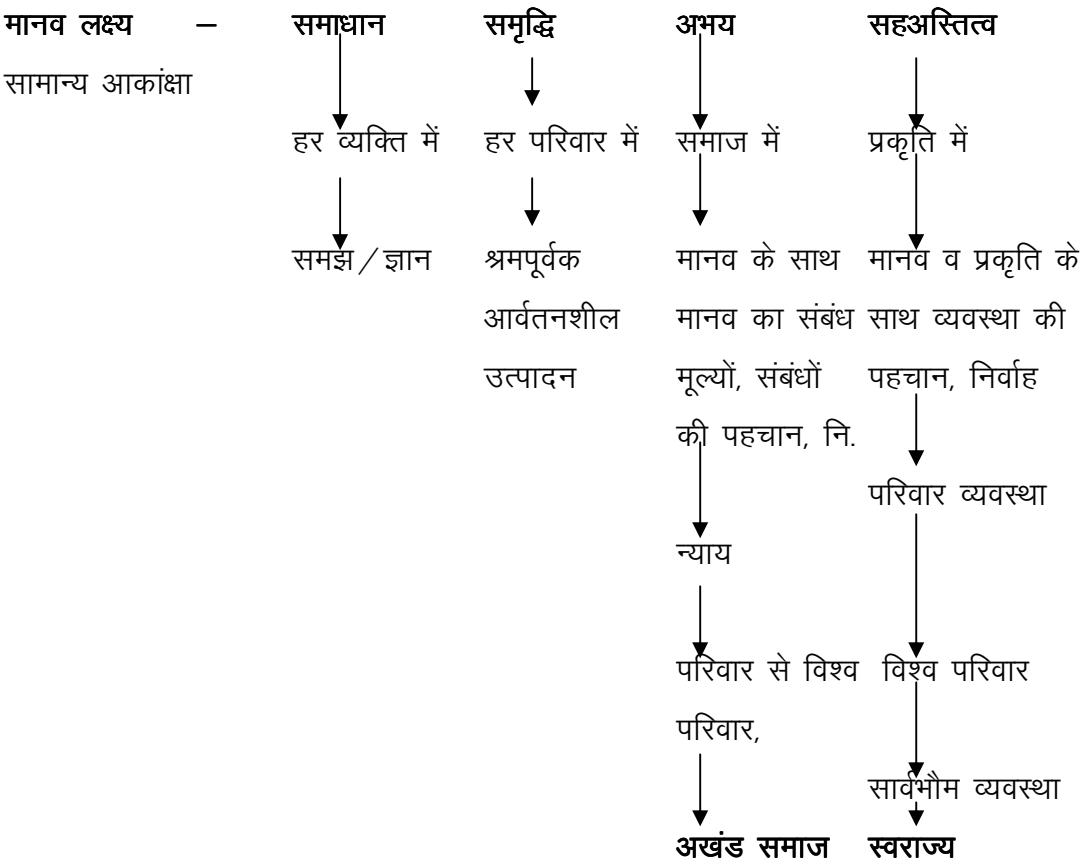

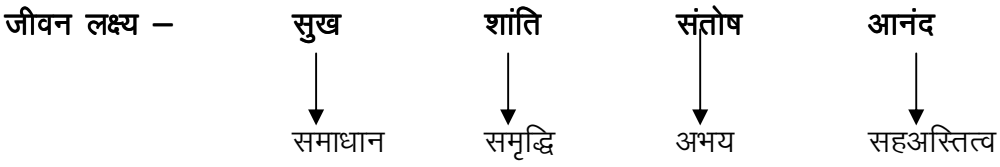

कर्मस्वतंत्रता क्या है ? मैं में होने वाली क्रिया एवं शरीर के सहअस्तित्व में होने वाली क्रिया है । इन क्रियाओं के साथ कार्य व्यवहार करना ही मानव धर्म है । इसका तृप्ति बिन्दू स्वतंत्रता है यही स्वअनुशासन है । स्वतंत्रता क्या है ? समझ के आधार पर कल्पना के साथ कार्य एवं व्यवहार ही स्वतंत्रता है ।

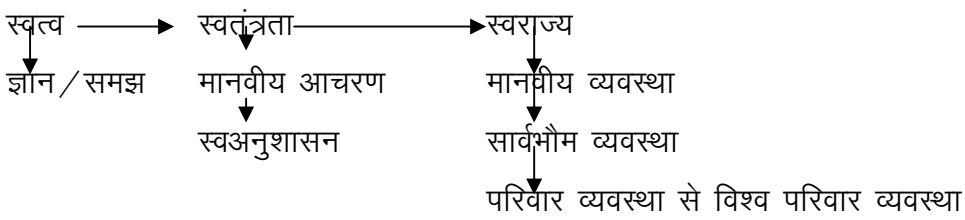

मानव के जीने के चार आयाम ।

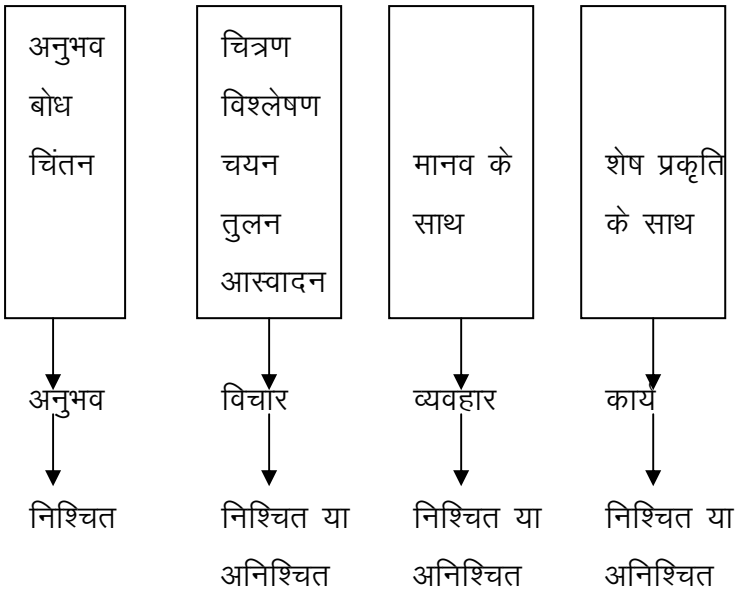

अनुभव के आधार पर विचार का निश्चित होना ही संस्कार है ।

संस्कार + वातावरण + अध्ययन + संस्कार

उपरोक्त चर्चा के बाद दिए गए सिलेबस में आए विभिन्न बिन्दूओं पर चर्चा किया गया ।

संज्ञानीयता–ज्ञान का होना या संज्ञान का होना ही संज्ञानीयता है ।

संज्ञानशीलता – कल्पना से अनुभव की अनुभूति ही संज्ञानशीलता है ।

संवेदनशीलता– विचार या कल्पना का स्पष्ट होना, निर्वहन करना ही संवेदनशीलता है ।

क्षमता – संपूर्ण को समझने की मनुष्य की दक्षता ही क्षमता है ।

योग्यता – जो संभावना है उससे अर्जित कर लेना ही योग्यता है ।

करूणा – जितना समझे हैं उससे अधिक के लिए प्रयास करना, अधिक की संभावना ही करूणा है । योग्यता के अनुसार पात्रता बनती है। जब तक क्षमता न आए योग्यता, पात्रता चलता रहता है ।

ज्ञान – अनुभव ही ज्ञान है । ज्ञान का मतलब है, अनुभव, बोध एवं चिंतन का होना ।

विवके– ज्ञान के आधार पर लक्ष्य स्पष्ट होना ही विवके है ।

विज्ञान – लक्ष्य को पूरा करने के तरीके, कार्यक्रम का विस्तार (निराकरण) ।

व्यक्तित्व – मानव का त्व या व्यवस्था ही व्यक्तित्व है । व्यवस्था का मतलब है होना ।

प्रतिभा – व्यक्तित्व के साथ कार्य, व्यवहार ही प्रतिभा है ।

दृष्टा – दृष्टा का मतलब है देखने वाला । संपूर्ण को देखना । इसका तृप्ति बिन्दू है अनुभव ।

कर्ता – कर्ता का मतलब है करने वाला । निर्णय लेने वाला । इसका तृप्ति बिन्दू है संपूर्णता के साथ जीना । न्याय प्रमाणित होना ।

भोक्ता – भोक्ता का मतलब है भोगने वाला । इसका तृप्ति बिन्दू है निरंतर सुख ।

अनुशरण – अनुशरण का मतलब है बडों के पीछे पीछे चलना । फालो करना ।

अनुकरण – बडों को देखकर करना ।

अनुशासन – नियम का पालन करना ।

स्वअनुशासन – जॉचकर पालन करना ।

सहअस्तित्व – अस्तित्व ही सहअस्तित्व है । शून्य में संपृक्त ।

विकासक्रम – गणनशील, आवर्तनशील विधि से क्रम, संक्रमण न होना । (जड ईकाई)

विकास – गणनपूर्ण, संक्रमत (1) हो जाना, पूर्णता प्राप्त कर लेना । (चैतन्य ईकाई)

जीवनी क्रम – एक शरीर से दूसरे शरीर को चलाना ।

जागृति क्रम – मैं के प्रति, क्रियाओं के प्रति ध्यान जाना ।

जागृति – संक्रमण (2), क्रियापूर्णता, ज्ञान समाधान ।

जागृति का प्रमाण – संक्रमण (3), मानवीयतापूर्ण आचारण की पूर्णता ।

पूर्ण त्रय – गठनपूर्णता से क्रियापूर्णता से आचरणपूर्णता ही पूर्ण त्रय है ।

प्रमाण त्रय – प्रमाण त्रय का मतलब है अनुभव प्रमाण, व्यवहार प्रमाण से कार्यप्रमाण होना ही प्रमाण त्रय है ।

एषणा त्रय – एषणा त्रय का मतलब है वित्त एषणा, परिवार एषणा एवं लोक एषणा का होना । वित्तएषणा धन से संबंधित होता है। परिवार एषणा परिवार एवं संबंधी से संबंधित होता है । लोकएषणा यश या समाज से संबंधित होता है ।

विषय चतुष्ठ – विषय चतुष्ठ भय, भोजन, निद्रा एवं मैथुन का कहते हैं ।

मानवीय शिक्षा – मानवीय आचरण को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित या संक्रमित करने की शिक्षा ही मानवीय शिक्षा है ।

मानवीय संविधान – मानव मानव के साथ, मानव प्रकृति के साथ व्यवस्था में कैसे जियेगा इसका विधान, विस्तार ही मानवीय संविधान है ।

मानवीय व्यवस्था – मानव मानव के साथ तथा शेष प्रकृति के साथ मानवीय संविधान से जीना या विस्तार ही मानवीय व्यवस्था है ।

मूल्य – यर्थाथता का, अर्थ का, भागीदारी का चिंतन ही मूल्य है ।

वस्तु मूल्य – जड वस्तु के साथ परस्परता का मूल्य, वस्तु मूल्य है ।

कला मूल्य – समझने समझाने के क्रम में सुविधा का उपयोग ही कला मूल्य है ।

उपयोगिता मूल्य – शरीर के पोषण व संरक्षण के संदर्भ में मूल्य उपयोगिता मूल्य है ।

मानवीय मूल्य – मानव के जीने के अर्थ में मूल्य ही मानवीय मूल्य है ।

जीवन मूल्य – सुख, शांति, संतोष एवं आनंद ही जीवन मूल्य है ।

विधि – सह अस्तित्व का अनुभव ही विधि है । धर्म है ।

संस्कृति – सह अस्तित्व का विचार ही संस्कृति है । सत्य है ।

सभ्यता – सह अस्तित्व का व्यवहार ही सभ्यता है । न्याय है ।

व्यवस्था – सह अस्तित्वपूर्ण कार्य ही व्यवस्था है ।

अनुभव – सत्य का, सह अस्तित्व का ही अनुभव ।

बोध – वास्तविकता का, सहअस्तित्व का, धर्म का ही बोध ।

चिंतन – यर्थाथता का, अर्थ का, भागीदारी का, मूल्य का ही चिंतन ।

प्राकृतिक नियम – जड का जड से संबंध का अध्ययन ही प्राकृतिक नियम है । यही व्यवस्था है ।

बौद्धिक नियम – चैतन्य का जड से संबंध का अध्ययन ही बौद्धिक नियम है । यही समाधान है ।

सामाजिक नियम – मानव का मानव से संबंध का अध्ययन ही सामाजिक नियम है । यही न्याय है।

नीति त्रय – अर्थ नीति, धर्म नीति एवं राज्य नीति ही नीति त्रय है । अर्थनीति का मतलब है संवहन । धर्म नीति का मतलब है सदुपयोग । राज्यनीति का मतलब है संरक्षण ।

उपयोग – न्याय के अर्थ में प्रयोग ही उपयोग है ।

सदुपयोग – धर्म, व्यवस्था के अर्थ में प्रयोग ही सुदपयोग है ।

प्रयोजनीयता – सत्य के अर्थ में प्रयोग ही प्रयोजनीयता है ।

मध्यस्थ – स्वयं में बने रहना, गुण में बने रहना ही मध्यस्थ है ।

सम मध्यस्थ – रचना के अर्थ में रहना ही सम मध्यस्थ है ।

विषम मध्यस्थ – विरचना के अर्थ में रहना ही विषम मध्यस्थ है ।

कारण भाषा – किसी भी ईकाई का स्वभाव एवं परमधर्म जो निरंतर रहता है उसे कारण भाषा कहते हैं ।

गुण भाषा – किसी ईकाई का रूप व गुण जो कि निरंतर नहीं रहता उसे भाषा को गुण भाषा कहते है ।

गणित भाषा – रूप, दिशा, देश, काल ईकाई का गणना की भाषा को गणित भाषा कहते हैं ।

शिक्षा के छः प्रमाण या आयाम

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी ।

पंचकोटि मानव

1. **मानव** – मानव में न्याय प्रमाणित होता है ।
2. **देवमानव**– देवमानव में न्याय एवं धर्म प्रमाणित होता है ।
3. **दिव्य मानव** – दिव्य मानव में न्याय, धर्म के साथ सत्य भी प्रमाणित होता है ।
4. **पशु मानव** – छल कपटपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करता है, जीव अवस्था ।
5. **राक्षस मानव –** क्रुरतापूर्णक अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है ।

इसके पश्चात आदरणीय बाबा नागराज जी ने संबोधित किया । ततपश्चात प्रतिभागियों द्वारा अपना–अपना अनुभव शेयर किया गया । इसके पश्चात शिविर का समापन हुआ ।

––0––